THE TIMES OF INDIA

Date: 25-01-17

Bridge The Gulf

Abu Dhabi crown prince's visit should boost India's Middle East outreach

There's no understating the significance of the visit of Abu Dhabi Crown Prince Sheikh Mohammed bin Zayed Al Nahyan to New Delhi as the chief guest of the Republic Day celebrations. That the crown prince will be only the third leader from the Middle East to grace the occasion highlights the growing synergy between India and the United Arab Emirates. This is welcome since India has long been lukewarm towards the Mideast despite sharing historical ties with the region. In order to truly revive Mideast relations New Delhi needs a strategic partner. And UAE with its modern outlook, hunger for an innovation-driven economy, and substantial Indian diaspora perfectly fits the bill.

Two-way trade between India and UAE stood at $60 billion in 2014, making UAE India's primary trading partner in the Mideast. However, there's considerable room for growth. Add to this the fact that UAE today is looking to diversify its economic portfolio beyond oil and gas by leveraging new technologies. This perfectly syncs with India's capacities in the IT sector. It will be recalled that Prime Minister Narendra Modi's visit to UAE in 2015 had seen the latter commit to investing $75 billion in Indian infrastructure. This should receive a fillip with the crown prince's visit, even as New Delhi must scramble to propose projects that will soak up the funds and build its infrastructure.

That said, it's in the security and counterterrorism area that bilateral ties have seen a clear upswing. Both India and UAE face threats from radical Islamist terrorism and groups such as Taliban and Islamic State (IS) are a cause for common concern. Recently, five UAE diplomats were killed in Afghanistan in a bombing attack attributed to the Haqqani network. That should make UAE more amenable to seeing India's point of view on the Haqqani network, Taliban and their Pakistani sponsors. UAE has already deported several Indians linked to IS over the last couple of years. Institutionalisation of such counterterror cooperation is imperative for security in the region.

Overall, it's commendable that New Delhi is now reversing its tendency of viewing the Mideast as a diplomatic minefield with too many political and sectarian cross-currents – which ceded the Gulf to Pakistan as its 'natural' South Asian ally. Geopolitical circumstances today also provide India with enhanced opportunities to do so. And UAE can certainly serve as India's springboard to the Gulf.

दैनिक जागरण

Date: 25-01-17

संस्कृति के खिलाफ साजिश

गत रविवार को तमिलनाडु में जल्लीकट्टू से संबंधित अध्यादेश लागू होने के पश्चात प्रदेश के विभिन्न भागों में इस खेल का आयोजन हुआ, जिसमें दो लोगों की मौत हो गई और कई अन्य घायल हो गए। मदुरै में विरोध प्रदर्शन के उपरांत एक और व्यक्ति की जान चली गई। इन दोनों दुर्भाग्यपूर्ण घटनाओं के बाद जल्लीकट्टू विरोधी पुन: मुखर हो गए हैं। पशु अधिकार संगठन पेटा द्वारा अध्यादेश को चुनौती देने की संभावना के कारण प्रदेश सरकार ने सर्वोच्च न्यायालय में कैवियट याचिका दाखिल कर दी है। तमिलनाडु सरकार ने विधानसभा में जल्लीकट्टू के संबंध में एक विधेयक लाने का फैसला किया है, किंतु समर्थक इस खेल के स्थाई हल और पेटा पर प्रतिबंध की मांग कर रहे हैं। इसी कारण अलंगानल्लूर में प्रदर्शनकारियों ने जल्लीकट्टू नहीं होने दिया।

विदेशी धन पोषित गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से भारत में गत कई वर्षों से जल्लीकट्टू विरोधी अभियान चल रहा है, जिसमें पीपुल फॉर द एथिकल ट्रीटमेंट ऑफ एनिमल (पेटा) सबसे अधिक मुखर है। वर्ष 2006 में सर्वप्रथम इस खेल पर प्रतिबंध लगाने के लिए मद्रास उच्च न्यायालय का दरवाजा खटखटाया गया। 1985 के शाह बानो मामले में शीर्ष अदालत के ऐतिहासिक निर्णय को बदलने की तत्परता जिस प्रकार तत्कालीन राजीव गांधी सरकार ने दिखाई, जल्लीकट्टू को लेकर वैसी आतुरता उस कालखंड में क्यों नहीं दिखी, जब कांग्रेस और द्रमुक दोनों सत्ता में थे? कांग्रेस और उसकी सहयोगी द्रमुक द्वारा जल्लीकट्टू का समर्थन करना, किसी ढोंग से कम नहीं है। कांग्रेस प्रवक्ता रणदीप सुरजेवाला के अनुसार कांग्रेस तमिल संस्कृति का सम्मान करती है और जल्लीकट्टू को लेकर तमिलजनों के अधिकारों की रक्षा करना केंद्र व प्रदेश सरकार का दायित्व है। इससे पूर्व कांग्रेस भाजपा पर तमिलनाडु में ब्राह्मणवाद को बढ़ावा देने का आरोप लगा चुकी है। क्या यह सत्य नहीं है कि 2016 के विधानसभा चुनाव में कांग्रेस ने अपने घोषणापत्र में जल्लीकट्टू पर प्रतिबंध को न्यायोचित ठहराया था?

जब 2011 में संप्रग-2 सरकार द्वारा जल्लीकट्टू विरोधी अधिसूचना जारी की गई थी, तब कांग्रेस और द्रमुक क्यों चुप रहे? जब 2016 जनवरी में मोदी सरकार ने तमिल जनभावना का सम्मान करते हुए प्रतिबंधित जल्लीकट्टू को लेकर अध्यादेश जारी किया और पेटा, जिसमें कांग्रेस नेता अभिषेक मनु सिंघवी सलाहकार हैं, उस संगठन ने केंद्र के निर्णय को चुनौती दी, तब कांग्रेस और द्रमुक कहां थे? यह किसी विडंबना से कम नहीं कि सेक्युलरिस्टों, वामपंथी चिंतकों, बुद्धिजीवियों व गैर-सरकारी संगठनों के लिए गोवंश की हत्या पर प्रतिबंध एक समुदाय विशेष के पसंदीदा खाने के अधिकार पर आघात है, किंतु उनके लिए जल्लीकट्टू खेल पशु क्रूरता का प्रतीक है। पर्यावरण को क्षय, प्राकृतिक संसाधनों की कमी और मनुष्य जीवन को खतरे का हवाला देकर दीपावली पर पटाखे फोड़ना, होली में पानी का उपयोग, कृष्ण जन्माष्टमी पर दही-हांडी प्रतियोगिता जैसे पारंपरिक उत्सवों का विरोध किया जाता है।

किंतु ईद पर गोवंश, बकरे, ऊंट आदि पशुओं की कुर्बानी या क्रिसमस पर टर्की का सेवन मजहबी रिवाज का विषय बनकर न्यायसंगत हो जाता है। भारत में पशु क्रूरता रोकथाम कानून 1960 की धारा-28 की संवैधानिकता को कई बार चुनौती दी गई है। इस धारा के अंतर्गत, धार्मिक मान्यताओं के चलते बलि या कुर्बानी की छूट है। वर्ष 2015 सितंबर में बकरीद पर कुर्बानी के खिलाफ याचिका पर सुनवाई करते हुए शीर्ष अदालत ने कहा था कि यह संवेदनशील मामला है और अदालत का काम धार्मिक सद्भाव को संतुलित करना है। वह लोगों के अधिकारों को खत्म नहीं कर सकती। जल्लीकट्टू तमिलनाडु का न केवल परंपरागत खेल है, बल्कि यह दक्षिण भारत के कृषि प्रधान विरासत का महत्वपूर्ण अंग भी है। विदेशी एजेंडे पर काम करनी वाली संस्थाओं का कुतर्क है कि स्पेन की प्रसिद्ध बुल-फाइटिंग, जो कि वहां के लोगों लिए एक भव्य

परंपरा है, उसकी भांति इस खेल में बैल या सांड से क्रूरता की जाती है। पोंगल पर तमिलनाडु में जल्लीकट्टू के आयोजन का विशेष महत्व है। खेती का मुख्य आधार होने के कारण देश के करोड़ों आस्थावान हिंदुओं सहित तमिलों के लिए बैल पूजनीय है। मान्यता है कि यह खेल हजारों वर्ष पुराना है, जिसमें बुल-फाइटिंग की तरह बैलों को जान से मारा नहीं जाता और न ही उन्हें काबू करने वाले युवक किसी हथियार का उपयोग करते हैं। तमिल शब्द सल्ली और कट्टू से मिलकर जल्लीकट्टू बना है, जिसका मतलब सोने-चांदी के सिक्कों से होता है, जो सांड़ या बैल के सींगों पर बंधे होते हैं। जल्लीकट्टू को लेकर विरोधियों का एक दुष्प्रचार यह भी है कि मनुष्य और पशु के जीवन के लिए यह खेल खतरनाक है। यह सत्य है कि 2010 से 2017 के बीच जल्लीकट्टू खेलते हुए 19 लोगों की मौत हो गई थी। क्या पर्वतारोहण, बेस जपिंग, पैराग्लाइडिंग, फॉर्मूला-वन रेस, मोटो-जीपी, स्कीइंग आदि खेलों में मनुष्य जीवन को खतरा जल्लीकट्टू से कम होता है?

वर्ष 2014 में ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट खिलाड़ी फिलिप ह्यूज के सिर पर गेंद लगने से मौत हो गई थी। क्या उस दुर्भाग्यपूर्ण घटना के बाद क्रिकेट पर प्रतिबंध लग गया? कई विशेषज्ञों का मानना है कि तमिलनाडु में गोवंशों के प्रजनन के लिए जल्लीकट्टू सर्वश्रेष्ठ बैलों के चयन का महत्वपूर्ण माध्यम है। स्थानीय मीडिया रिपोर्टों के अनुसार जल्लीकट्टू पर प्रतिबंध और विवाद के कारण किसानों को बैलों को कसाईखानों में औने-पौने दामों पर बेचने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है। क्या पेटा जैसे पशु अधिकार संगठनों को बूचड़खानों में गोवंशों की निर्मम हत्या में क्रूरता नजर नहीं आती? अनादिकाल से हिंदू जीवन दर्शन में गोवंश (गाय, भैंस, बैल और सांड़) को पूज्य माना जाता है।

असंख्य हिंदुओं की मान्यता है कि गाय में देवताओं का वास है। भारतीय चिंतन में जीवित हरेक स्वरूप का अपना महत्व है। जब नवंबर 1947 को मवेशियों के संरक्षण व संवद्र्धन के लिए सर दातार सिंह आयोग ने मवेशियों की हत्या पर पूर्ण प्रतिबंध की संस्तुति की, तब भी मुस्लिम तुष्टीकरण के खेल ने इसे पूरा होने नहीं दिया। आज भी जब देश में गोकशी के विरुद्ध कानून बनाने की चर्चा होती है, तो सेक्युलरवाद का प्रलाप कर वामपंथी, स्वघोषित पंथनिरेपक्षक, पश्चिमपरस्त गैर-सरकारी संगठन और तथाकथित बुद्धिजीवी इसमें अवरोधक बन जाते हैं। भारत की सांस्कृतिक और भौगोलिक एकता के खिलाफ कई वर्षों से षड्यंत्र रचा जा रहा है। देश में ऐसे कई संगठन विद्यमान हैं जो विदेशी धन और विदेशी एजेंडे के बल पर पशु अधिकार, मानवाधिकार, सामाजिक न्याय, महिला सशक्तीकरण, मजहबी सहिष्णुता और पर्यावरण की रक्षा के नाम पर भारत की कालजयी सनातन संस्कृति और बहुलतावाद को चोट पहुंचा रहे हैं, जिसमें उन्हें राष्ट्रविरोधी सेक्युलरिस्टों और वामपंथी चिंतकों का आशीर्वाद प्राप्त है। जल्लीकट्टू के खिलाफ मिथ्या प्रचार उसी कुत्सित गठजोड़ का परिणाम है। आशा है कि सर्वोच्च न्यायालय अपनी न्यायिक सक्रियता इस पारंपरिक खेल को पूर्ण रूप से प्रतिबंधित करने के विपरीत उसे और अधिक नियंत्रित व उसमें सुधार लाने की दिशा में दिखाएगा।

[लेखक बलबीर पुंज, राज्यसभा सदस्य रह चुके हैं]

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

Date: 24-01-17

Lose-lose situation

Government's response to the Jallikattu protests sets a worrying precedent.

The Tamil Nadu government has itself to blame for the violence unleashed by pro-Jallikattu protestors in Chennai on Monday. The government had, in effect, prepared the ground for the protestors to break the law when it ignored the fact that the matter was sub judice and promulgated an ordinance to circumvent the existing ban on Jallikattu. The government's bowing to popular will at the expense of the judicial process — an order is due from the Supreme Court on the matter — undermined the majesty of the law. Can it now blame the protestors for disrupting public order? It could even be said that the mob took the cue from the state government, which endorsed the calls to risk contempt of court in the name of tradition and cultural pride and used its might to push through first an ordinance and then a bill to facilitate Jallikattu.

The protestors at Marina were an inchoate group of young people without any leadership when protests began last Tuesday. They raised a slew of issues including drought and rural distress even though the focal point was the ban on Jallikattu, a sport identified with peasant communities in the state. As the crowds swelled and protests spread, the government agreed with the argument that the Centre, which had amended the Prevention of Cruelty to Animals Act, 1960, that led to the ban on Jallikattu, and the higher judiciary, were ignorant of, if not disrespectful to, Tamil cultural values. The state administration could have, instead, engaged with the protestors and impressed on them the importance of respecting the legal process. It could have challenged the narrative that attempted to reduce Tamil culture to Jallikattu and announced initiatives to address and alleviate rural distress. Most importantly, the government could have been firm about waiting for due process to be completed before promising executive action enabling the conduct of Jallikattu. These failures have now come back to haunt the state government as protestors, surprised by the sudden turnaround in the government's approach to them, wreaked havoc on Chennai streets.

The events at Marina must also bring a moment of reflection for the judiciary. The Supreme Court, which observed that society must move from an anthropocentric worldview to a biocentric ethics when it ruled against the conduct of Jallikattu on the ground that it involved cruelty to animals, could ponder the question: Wouldn't regulation offer a better prospect than an outright ban in enforcing its own guideline?

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 24-01-17

तमिलनाडु में मुक्ति की नई बयार

तमिलनाडु में फसल कटने की खुशी में पोंगल मनाया जाता है। चार दिनों तक चलने वाले इस उत्सव में अच्छी खेती के लिए सूर्य की पूजा की जाती है। पहला दिन सूर्य की उत्तर की यात्रा का शुभारंभ यानी उत्तरायण माना जाता है। देश के बाकी हिस्सों में यह मकर संक्रांति या फिर अलग-अलग नामों से प्रचलित है। रिवाज के अनुसार, इस दिन मिट्टी के बर्तन में मौसम के नए चावल और गुड़ को दूध में उबालकर पोंगल (एक

प्रकार की खीर) तैयार किया जाता है। हालांकि इस बार तमिलनाडु के किसानों के लिए पोंगल उदासी भरा रहा। वे अपने खेतों से उतना चावल भी नहीं बटोर पाए कि पोंगल बना पाते। पारंपरिक तौर पर इस दिन माता-पिता और भाई अपनी बेटियों व बहनों को उपहार के साथ फसल-उपज का कुछ हिस्सा देते हैं, लेकिन इस साल उन्होंने सिर्फ उपहार बांटे। आधिकारिक आंकड़े कहते हैं कि इस मौसम में कर्ज की मार झेल रहे 17 किसानों ने आत्महत्या की, हालांकि अखबारों के अनुसार यह आकंड़ा कम से कम 100 है।

पोंगल के अगले दिन मट्टू पोंगल मनाया जाता है। यह मवेशी पूजा का दिन होता है। इस दिन मवेशियों को नहलाया जाता है, उनके सींग रंगे जाते हैं, उन्हें फूलों से सजाया जाता है और फिर उनकी पूजा होती है। इसी दिन को जल्लीकट्टू के रूप में जाना जाता है। जल्लीकट्टू गांवों में खेला जाने वाला एक ऐसा खेल है, जिसमें गांव के पुरुष सांड़ को वश में करने की कोशिश करते हैं और अपनी ताकत दिखाते हैं। ग्रामीण युवाओं और सांड़ों के बीच यह पारंपरिक प्रतियोगिता वर्षों से तमिलनाडु में होती रही है। हालांकि पिछले एक दशक में यह खेल पशुओं के साथ नैतिक व्यवहार के पक्षधर लोगों के संगठन 'पेटा' और किसानों के बीच विवाद की जड़ बन गया है। जल्लीकट्टू में सांड़ों को आक्रामक बनाने के लिए उन्हें न सिर्फ शराब पिलाई जाती है, बल्कि उनकी आंखों में मिर्ची भी झोंकी जाती है। पेटा के अनुसार, यह उनके साथ क्रूरता है।

मगर जल्लीकट्टू सांड़ों की देखभाल करने वाले इससे अलग राय रखते हैं। उनकी मानें, तो ऐसे सांड़ों को वे पूरे साल अपने बच्चे की तरह पालते हैं। उन्हें पौष्टिक चारा देते हैं और सुबह-शाम बाहर ले जाते हैं। ये सांड़ खेती या दूसरी गतिविधियों में भी काम में नहीं लिए जाते। ऐसे लोगों का दावा यह भी है कि वे सिर्फ इनसे खेलते हैं, उन्हें कोई चोट नहीं पहुंचाते। अगर किसी सांड़ को चोट लग भी जाती है, तो उसे तुरंत खेल से बाहर कर दिया जाता है। तमिलनाडु का राजनीतिक वर्ग भी सांस्कृतिक व धार्मिक महत्व को देखते हुए इस खेल का पक्षधर रहा है।

बहरहाल, पशु-प्रेमियों और जल्लीकट्टू आयोजकों के बीच चली लंबी कानूनी लड़ाई के बाद आखिरकार 2014 में सर्वोच्च न्यायालय ने इस खेल पर प्रतिबंध लगा दिया। फैसले में कहा गया कि संस्कृति और परंपरा की रक्षा का तर्क पशुओं के खिलाफ हो रही क्रूरता के सामने बेमानी है। पिछले साल आठ जनवरी को केंद्र ने कुछ प्रावधानों के साथ इस प्रतिबंध को हटाने के लिए एक अधिसूचना भी जारी की, लेकिन पशु कल्याण बोर्ड, पेटा और कुछ अन्य संगठनों ने उसे सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दे दी। शीर्ष अदालत ने केंद्र की उस याचिका को खारिज कर दिया, जिसमें 2014 के फैसले (प्रतिबंध) की समीक्षा की बात कही गई थी। इस साल भी पोंगल के एक दिन पहले अदालत ने जल्लीकट्टू के समर्थन में कोई आदेश पारित करने की मांग ठुकरा दी थी।

इसी बात ने तमिलनाडु में अनिश्चय का माहौल बना दिया। तमिलनाडु सरकार के प्रशासनिक मुख्यालयों को नजरअंदाज करते हुए बीते 17 जनवरी को प्रसिद्ध मरीना बीच पर जल्लीकट्टू के समर्थन में छात्रों का एक समूह इकट्ठा हुआ। इस खेल के लिए प्रसिद्ध मदुरै के अलंगनल्लूर में भी लोग जमा हुए। सोशल मीडिया से मिले खाद-पानी ने इस आंदोलन को ऐसी सुर्खियां दीं कि सप्ताह बीतते-बीतते पूरे राज्य में करीब डेढ़ करोड़ लोग जलीकट्टू के समर्थन में घरों से बाहर आ गए। संयुक्त अरब अमीरात, दक्षिण-पूर्व एशियाई देशों, यूरोप, ब्रिटेन और अमेरिका के तमिल प्रवासियों का साथ भी इसे मिला।

आखिर तमिलनाडु अचानक इस तरह क्यों उबल पड़ा? इसकी कई वजहें हैं। दरअसल, जयललिता की मौत और करुणानिधि के बीमार रहने से राज्य की राजनीति में एक शून्य उभर आया है। यहां के लोग केंद्र पर भरोसा नहीं कर पाते, सरकार चाहे जिसकी भी रहे। उनकी नजर में दिल्ली संवेदनहीन ही नहीं है, उनकी भाषा व संस्कृति को भी नजरअंदाज करती है। वर्ष 2009 में श्रीलंका के गृह-युद्ध में वहां के तमिल शरणार्थियों की रक्षा न कर पाने और सर्वोच्च न्यायालय के आदेश के बावजूद कर्नाटक को कावेरी नदी का पानी देने के लिए बाध्य न कर पाने की केंद्र की नाकामी ने लोगों का गुस्सा बढ़ाया है। रही-सही कसर जल्लीकट्टू पर प्रतिबंध ने पूरी कर दी। प्रतिबंध से यही संदेश गया कि तमिल अब अपना खेल भी नहीं खेल सकते। इसे संस्कृति और धर्म पर हमला माना गया। पढ़े-लिखे तबकों की नजर में यह प्रतिबंध मवेशियों की देसी

नस्लों को खत्म करके आयातित नस्लों को बढ़ावा देने की एक साजिश थी।प्राकृतिक संसाधनों को लेकर राज्य की आती-जाती रही सरकारों की नीतियों ने भी लोगों को नाराज किया है। सूबे के लोग भूमि व खनन माफियाओं की मनमानी और नदी व उपजाऊ जमीनों की लूट से भी खासे क्षुब्ध हैं। तमिलनाडु भले ही देश का सबसे अधिक शहरीकृत राज्य हो, मगर इसने गांव की अपनी जड़ें छोड़ी नहीं हैं। चेन्नई और दुनिया भर के विभिन्न हिस्सों में काम करने वाले आईटी प्रोफेशनल और छात्र यहां के विकास कार्यों को संभावित खतरे की चिंता के साथ देखते रहे हैं। दिक्कत यह भी रही कि तमिलनाडु में द्रविड़ सरकारों के दौरान प्रशासन काफी सख्त रहा। जयललिता शासन के दौरान तो खासा दमनकारी माहौल था, जहां असहमति और स्वतंत्र अभिव्यक्ति के अवसर बहुत कम थे। इसीलिए इस पर बहुत आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि आज जब राज्य में एक कमजोर सरकार है, तो लोग वहां खुलकर अपने विरोध का इजहार कर रहे हैं।

फिलहाल प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी का साथ मिलते ही राज्य सरकार ने आनन-फानन में एक अध्यादेश लाकर जल्लीकट्टू पर से प्रतिबंध हटा दिया है। इससे यह आंदोलन अभी भले थम जाए, लेकिन जल्लीकट्टू के बहाने जो बयार राज्य में बही है, वह जल्दी नहीं थमने वाली। मौजूदा मुख्यमंत्री ही नहीं, बल्कि सभी राजनीतिक दलों के लिए यह एक चुनौतीपूर्ण समय है, जिनमें मुख्यमंत्री की कुरसी पर नजर गड़ाए शशिकला भी शामिल हैं।

एस श्रीनिवासन, वरिष्ठ तमिल पत्रकार,(ये लेखक के अपने विचार हैं)

Date: 24-01-17

स्कूल की फीस का पेच

दिल्ली के निजी स्कूलों में जमा होने वाली फीस को लेकर सुप्रीम कोर्ट का ताजा फैसला पूरे देश के लिए महत्वपूर्ण साबित होगा। दिल्ली के 400 से ज्यादा निजी स्कूल बच्चों की ट्यूशन फीस बढ़ाना चाहते थे, लेकिन दिल्ली सरकार ने उन्हें ऐसा करने से रोक दिया, जिसके खिलाफ इन स्कूलों ने हाईकोर्ट का दरवाजा खटखटाया। ठीक एक साल पहले हाईकोर्ट ने अपने आदेश में कहा था कि स्कूल मनमाने तरीके से फीस नहीं बढ़ा सकते, इसके लिए उन्हें दिल्ली सरकार के शिक्षा विभाग से इजाजत लेनी ही होगी। दरअसल, ये वे स्कूल हैं, जिन्होंने सरकार से सस्ती कीमत पर जमीन खरीदी या लीज पर ली थी। जमीन लेने के इस सौदे की एक शर्त यह भी थी कि ये स्कूल बिना शिक्षा विभाग की अनुमति लिए अपनी ट्यूशन फीस नहीं बढ़ाएंगे। इसके पीछे की सोच यह थी कि सरकार उन्हें रियायती दाम पर जमीन दे रही है, इसलिए वे रियायती दरों पर ही बच्चों को शिक्षा देंगे। ये स्कूल व्यावसायिक स्तर पर चलते हैं, इसलिए उनका प्रबंधन भी उसी स्तर पर फीस को बढ़ाना चाहता है, लेकिन अब जमीन के सौदे ने उनके हाथ बांध दिए हैं। ये निजी स्कूल हाईकोर्ट के फैसले के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट गए, तो वहां भी उनकी अपील खारिज हो गई। फैसला भले ही दिल्ली के लिए है, लेकिन इसका असर पूरे देश पर पड़ना लगभग तय है। ऐसे कई प्रदेश और शहर हैं, जहां शिक्षा के नाम पर रियायती कीमत पर जमीन उपलब्ध कराई जाती है। रियायती जमीन उपलब्ध कराने की शर्तों में दिल्ली की तरह बिना अनुमति फीस न बढ़ाने का मुद्दा सभी जगह होता है, यह अभी नहीं कहा जा सकता।

अभिभावकों के लिए यह एक अच्छी खबर है, लेकिन इसके दूरगामी नतीजे भी अच्छे ही हों, यह जरूरी नहीं। लोक-लुभावन राजनीति के चलते किसी भी सरकार के लिए यह अच्छा तरीका हो सकता है कि वह स्कूल फीस बढ़ने ही न दे। लेकिन इससे मुद्रास्फीति के साथ-साथ ही स्कूलों के खर्च बढ़ने नहीं रुक जाएंगे। यह आर्थिक दबाव इन स्कूलों पर कई तरह से बढ़ सकता है। यह सच है कि निजी स्कूल पैसा कमाने का जरिया भी होते हैं, लेकिन यह भी सच है कि नए तरीकों और नई तकनीक को अपनाने में भी वे आगे रहते हैं। बेशक इसमें बहुत कुछ दिखावा भी होता है, लेकिन शिक्षा सुविधाओं के मामले में वे सरकारी स्कूलों से बीस ही होते हैं। इसीलिए मध्यवर्गीय लोग उन्हें पसंद भी करते हैं। आर्थिक कारणों से अगर उन पर सुविधाएं कम करने का दबाव बनता है, तो धीरे-धीरे वे भी सरकारी स्कूलों या अनुदान प्राप्त स्कूलों के समकक्ष ही जा खड़े होंगे, जिसका नुकसान पूरी शिक्षा-व्यवस्था और अंत में देश को ही उठाना पड़ेगा।

यह ठीक है कि निजी स्कूलों को अनाप-शनाप फीस बढ़ाने की इजाजत नहीं दी जा सकती, लेकिन वे महंगाई का मुकाबला करते हुए स्कूल की सुविधाओं को बेहतर बनाने के लिए कुछ फीस बढ़ा सकें, इसका कोई रास्ता तो निकालना ही होगा। कई राज्यों ने स्कूल फीस के लिए नियामक संस्थाएं बनाई हैं। ये संस्थाएं तय करती हैं कि जरूरत के हिसाब से फीस किस हद तक बढ़ाई जानी चाहिए। तमिलनाडु में ऐसी नियामक संस्था 2009 में ही बन गई थी। बाद में कई अन्य राज्यों ने इस तरीके को अपनाया। हाल ही में पंजाब ने भी ऐसी नियामक संस्था बनाई है। वैसे दिल्ली ने भी ऐसी नियामक संस्था की बात दो साल पहले ही शुरू कर दी थी, लेकिन अभी तक इसका इंतजार ही है। दरअसल इस तरह की नियामक संस्थाएं शिक्षा ही नहीं, चिकित्सा जैसे जरूरी क्षेत्र के लिए भी बननी चाहिए। निजीकरण के दौर की यह सबसे बड़ी जरूरत है।